आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 3/सितंबर 2022
Received: 02/06/2022; Accepted: 12/08/2022; Published: 24/09/2022

"जय भीम"– मानव जीवन का एक खूनी अध्याय

- दिलना. के
केरल
ई-मेल : dilnakravi94@gmail.com

दिलना. के, "जय भीम"– मानव जीवन का एक खूनी अध्याय , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 2/अंक 3/सितंबर 2022, (219-223)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था जाती-व्यवस्था पर आधारित है। दलित एवं आदिवासी को हमेशा मुख्यधारा समाज से दूर रखा गया। भारतीय समाज में सदियों से दलित समाज जाति व्यवस्था का शिकार बना हुआ था। सवर्णों ने इन पर बहुत अत्याचार अन्याय व शोषण किया है। दलित शब्द को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। शब्दकोश के अनुसार दलित शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ मिलते हैं।' उच्चतर हिंदी कोश' में दलित शब्द की परिभाषा है "–जिसका दलन हुआ हो, जो कुचला गया हो"[1]। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दल दातु से हुई है। दलित का शाब्दिक अर्थ है मसला हुआ मर्दित, दबाया या कुचला हुआ लोग। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं –"जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ठ, मर्दित पस्त, हिममत, हतोत्साहित वंचित वह दलित।"[2] डॉ श्यौराज सिंह बेचैन का कहना है " -जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है वह दलित है।"[3] डॉ बाबासाहेब आंबेडकर के अनुसार दलित जातियाँ वे है जो अपवित्रकारी होती है, इनमें निम्न श्रेणी के सभी लोग आते हैं।

दलित साहित्य की निर्मिती के मूल में डॉ अंबेडकर की विचारधारा मुख्य रूप से काम कर रही है। उनकी विचारधारा के केंद्र में मूल मनुष्य है। इसलिए उन्होंने मानवता को केंद्र में रखा है। शरण कुमार लिंबाले मानते हैं "दलित साहित्य अपना केंद्र बिंदु मनुष्य को मानता है। डॉ बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ। उनकी वेदना को वाणी मिली। क्योंकि उस मूल समाज को डॉ बाबासाहेब आंबेडकर के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की वह वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की वेदना मैं की वेदना नहीं है समाज की वेदना है।"[4] दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य के मूल संवेदना के साथ दलित साहित्य ने मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरी माना है। विश्व साहित्य में भी दलित साहित्य ने अपनी अलग पहचान

बनायी है। अस्पृश्यता की वेदना ही उसका प्राण है। जब तक अस्पृश्यता, जातिप्रथा, वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन नहीं होगा तब तक समानता की स्थापना नहीं होगी।

जिस तरह दलित साहित्य एवं आदिवासी साहित्य समाज के अनुसूचित जाति के हक़ के लिए आवाज़ उठायी थी, उसी तरह की कोशिश फिल्मों में भी देखने को मिलती है । प्रतिरोध की भावना भारतीय सिनेमा के अनेक पात्रों में देखने को मिलता है । सिनेमा हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है । सिनेमा एक सांस्कृतिक वाहक है । शुरुआती दौर से ही व्यावसायिक और अव्यवास्यिक फ़िल्में बनती रही हैं । सिनेमा साहित्य की भांति समाज को आईना दिखाती है । मानव जीवन को गहराई से प्रभावित करने में सिनेमा का भी अद्वितीय स्थान है । इक्कीसवीं सदी के आरंभ से ही सिनेमा में पौराणिक कथाओं की जगह भ्रष्टाचार, राजनीति, स्त्री समस्या आदि स्थान लेने लगे । कभी-कभी सामाजिक घटनाओं को लेकर भी फिल्म बनती गयी । भूमंडलीकरण के फलस्वरूप सिनेमा की विषयवस्तु, उसके बनाने के तकनीक सब में परिवर्तन आने लगे ।

अस्मितावादी विमर्शों ने दलित एवं जनजातियों की दशा और दिशा बदलने की कोशिश की । विमर्श साहित्य से समाज प्रभावित हुआ ही, उसका असर फिल्म में भी पड़ा । पहले तो साहित्य की तरह दलित समस्याओं को भी सिनेमा जगत से दरकिनार किया था - "100 करोड़ से ऊपर की जनसंख्या वाले देश के सिनेमा में बहुजन-जीवन के स्वाभाविक चित्रण का अभाव चिंताजनक है और इसका एक बड़ा कारण संभवतः यह है कि बहुजनों का बड़ा हिस्सा अब भी सिनेमा का उपभोक्ता समुदाय में तब्दील नहीं हुआ है । यह तब तक नहीं बदलेगा जब तक उनकी परिस्थितियों को स्वाभाविक तरीके से नहीं दिखाया जाएगा । अगर हम दलित समस्या पर भी केन्द्रित रहेंगे और सिर्फ सुधार के आग्रही के बतौर ही दलितों का चित्रण करेंगे तो वे कभी समाज के स्वाभाविक हिस्से की तरह कभी नहीं दिखेंगे ।"[5] साहित्य और सिनेमा दोनों ही अपने-अपने ढंग से समाज को प्रभावित किया और कर रहा है । डॉ आंबेडकर ने दलित समाज में जो शिक्षा का मन्त्र फूंका, उसके फलस्वरूप दलितों में चेतना जागृत हुई । उस चेतना से उनके मन में प्रतिरोध की भावना आ गयी । उस प्रतिरोध को निर्देशकों ने सिनेमा में भी दर्शाया । दलित समस्या को फिल्म के केंद्र में लाकर रखने की कोशिश की ।

सिनेमा में दलित प्रतिरोध 'मदर इण्डिया' से शुरू होकर आगे बढ़ती है। उसके बाद 'चंडीदास', 'सुजाता','धर्मात्मा','एकलव्य-डी रॉयल गार्ड' , 'मोहनदास' ,'बवंडर' से लेकर आगे बढ़ती गयी । हिंदी, मराठी, गुजराती, तमिल, मलयालम, तेलूंगु, कन्नड़ आदि अनेक भाषाओं में दलित प्रतिरोष की फ़िल्में बनती गयी । वर्तमान समय में इस विषय पर बननेवाली फिल्मों की संख्या ज्यादा है । तमिल सिनेमाओं ने पिछले कुछ साल से व्यवसायिक दृष्टी से हटकर सामाजिक बदलाव की पटकथा लिख रही है । पिचले कुछ सालों से समाज में आए फिल्म 'काला', 'परियेरुम पेरुमाल', 'कबाली','असुरन', 'जय भीम' आदि फिल्म दलित समाज एवं दलितों के जीवन को दर्शाती है । तमिल में पिछले महीने आई टी जे ज्ञानवेल की फिल्म 'जय भीम' तमिलनाडु के एक वकील चंद्रू की सच्ची कहानी के बारे में है। इस फिल्म का ओ.टी.टी. के माध्यम से अनेक भाषाओं में रिलीज़ हुआ है । यह फिल्म एक जनजाति के खिलाफ पुलिस की बर्बरता के बारे में है , जिसे उन्होंने अपने करियर में सुलझाया। यह एक ऐसी फिल्म है जो जाति व्यवस्था, कानून लागू करने वालों और न्यायिक व्यवस्था को खत्म करती है और जिरह में उनमें से प्रत्येक से सवाल करती है। हालांकि

कहानी साल 1995 की है, लेकिन फिल्म बताती है कि आज कुछ भी ज्यादा नहीं बदला है। प्रारंभ में लोगों के एक समूह को एक स्थानीय जेल से रिहा किया गया था और उनके परिवार धैर्यपूर्वक उन्हें प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वे बाहर निकलते हैं, तो उन्हें रोका जाता है और उनकी जाति के बारे में पूछा जाता है, इसलिए जेल अधिकारी पैसे लेते हैं और उन्हें स्थानीय पुलिस को सौंप देते हैं, निचली जातियों को झूठे मामलों के साथ बदल देते हैं..क्योंकि निचली जाति और गरीब उनके लिए अनाथ हैं। दक्षिण भारत के एक 'इरुलर' आदिवासी जाति के साथ हुए अन्याय का फिल्मांकन है । फिल्म में केंद्रीय पात्र सेंगीनी (लिजोमोल) और राजकन्नू (मणिकंदन) हैं, जो इरुलर जनजाति के एक शिकारी जोड़े हैं। फिल्म में उनकी केमिस्ट्री शानदार थी और हमें उनके सुख-दुख में ले जाएगी ।

यह पहली बार नहीं है जब फिल्म में अन्याय, दलित उत्पीड़न और पुलिस राज नजर आया हो। अधिकांश भाग के लिए, बहुत सारे तत्व हैं जो तथ्यों को अविश्वसनीय बनाने के लिए कल्पनाओं और अतिशयोक्ति को मिलाते हैं। आखिरकार दर्शकों के पास कुछ नहीं बचेगा। जय भीम एक वास्तविक घटना का पुनर्कथन है। इसमें कोई झूले नहीं हैं। व्यावसायिक फिल्म में कोई उतार-चढ़ाव नहीं होता है। जय भीम एक ऐसी फिल्म है जो आज भी दलितों के रहन-सहन के बारे में एक खुली किताब की तरह हमारे सामने खुलती है। इस कहानी का अधिकाँश पात्र निजी जीवन में आज भी जिंदा हैं । वकील चंद्रू का आत्मविश्वास एवं कर्मण्यता को फिल्म में उनका किरदार निभानेवाला सूर्या ने बहुत ही ईमानदारी से निभाया है । एक 'लोकअप डेथ' को आधार बनाकर उस मृत व्यक्ति की गर्बवती विधवा के लिए वकील की लड़ाई इस फिल्म में देख सकते है । 'हेबियास कोर्पस' का जिक्र इस फिल्म में अनेक बार आता है । वकील चंद्रू ने एक साक्षात्कार में कहा था- "जब तक किसी की क्षमताएं दूसरों के लिए उपयोगी नहीं हैं, तब तक इसका कोई फायदा नहीं है," उन्होंने कहा। ज्ञानवेल ने हमेशा लिखा है कि यह कितना सार्थक है - हर इंसान के लिए एक्टिविस्ट बनने का समय आ गया है। चंद्रू वकील हम सभी को होना चाहिए। केवल एक ही ताकत है जो अन्याय के खिलाफ कानून को न्याय दिला सकती है। लड़ाई ..संघर्ष और न्याय के अंतहीन इंतजार की फिल्म है जय भीम। सूर्य-ज्योतिका, ऐसी फिल्म बनाने पर आज भी आपको गर्व हो सकता है।

फिल्म में कई सीन देखना मुश्किल था..बहुत दुख हुआ । जय भीम के सबसे वास्तविक रूप से चित्रित कोर्ट रूम दृश्यों में से एक है। सूर्या ने अपने प्रदर्शन में ईमानदारी के साथ एक बहुत ही परिपक्व वकील की भूमिका निभाई .. मणिकंदन का चरित्र उनके दिल दहला देने वाले प्रदर्शन से हैरान था। आदिवासी समाज की शिक्षक की भूमिका निभाने वाली राजिशा विजयन गरीबों की मदद करती हैं। उन सभी ने अपनी भूमिकाओं को शानदार ढंग से निभाया। सीन रोल्डन के गाने फिल्म को ताकत देते हैं। सिनेमैटोग्राफी और एडिटिंग बेहतरीन है। निर्देशक ज्ञानवेलिन को एक ऐसी फिल्म बनाने के लिए सराहा गया, जिसमें दमित और बेजुबानों के दर्द को दृढ़ता से चित्रित किया गया था। जय भीम मानव जीवन का एक खूनी अध्याय है। यह सामंती जातिगत भेदभाव और राज्य आतंकवाद का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है जो अभी भी भारत में मौजूद है।

हम दुनिया के कई हिस्सों में अमानवीय वर्चस्व की त्रासदी देख रहे हैं। स्वतंत्रता के लंबे वर्षों और अम्बेडकर के नेतृत्व में तैयार किए गए समतावादी संविधान के अस्तित्व के बावजूद, दलितों के सामने आने में असमर्थता भारत की शासन नीति में एक दोष के कारण है। एक मजबूत महिला किरदार की मौजूदगी फिल्म की ऊंचाई को बढ़ाती है। असली चंद्रू (जस्टिस चंद्रू) जिसने कहा कि मार्क्स मुझे अम्बेडकर के पास ले आए, वही देश का गौरव है। मानव मन और साक्षी को मोहित करने वाली इस फिल्म को बनाने के लिए

सूर्या और ज्योतिका को धन्यवाद। फिल्म की शुरुआत में एडवोकेट चंद्रू (सूर्य) एक सवाल (मंच पर) पूछते हैं- स्कूल में फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता में गांधी, नेहरू जैसे सभी प्रकार के महत्वपूर्ण नेता हैं, लेकिन सिर्फ अम्बेडकर नहीं..? क्योंकि अंबेडकर ने खड़े होकर जमीनी स्तर के दलितों के लिए आवाज उठाई। तमिलनाडु में, जहाँ जातिवाद अभी भी जड़ा हुआ है, वहाँ एक वकील है जो अम्बेडकर विचारधारा में प्रभावशाली रहा है।

यह फिल्म कई सामाजिक समस्याओं को भी उठाती है । एस.सी. लोगों को स्कूल में जाकर पढाई करने का अवसर नहीं मिलता है । अधिकारी वर्ग का मानना है कि उनको जंगलों की रखवाली करके पहाड़ों में ही रहना है । समाज में शिक्षा पाकर पुनर्वासित होने की ज़रूरत नहीं है । कहानी पुरानी है, पर व्यवस्था आज भी नहीं बदली । इस फिल्म की गीत भी एक ऐसी है ' जंगलों की रखवाली करनेवाले'..... । आजादी के बाद भी पहाड़ों में रहनेवाले उन लोगों को मतदान का भी अधिकार नहीं था । इस तरह के लोगों को समाज हाशिये पर रखा है । सभी अधिकारों से वंचित रखा है । इने समय बीत जाने के बाद भी आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया । वे लोग आज भी हाशिये पर ही है ।

इस फिल्म में जनजातीय लोगों का विस्थापन एवं पुनर्वास का भी चित्रण है । वे लोग अपना परंपरागत काम छोड़कर मजदूरी करने को तैयार हो जाता है । इसलिए वे पहाड़ों से बीचे उतरकर गाँव एवं शहर में आकर अपनी एक नई जिंदगी की शुरुआत करते हैं । ईंट भट्टे में काम करने लगते हैं । क्योंकि उन्हें अपना परिवार का पालन-पोषण करना है या कर्ज से मुक्ति पाना है तो उन्हें इस तरह सामाजिक रूप से पुनर्वासित होना पड़ता है । जैसे 'गोदान' उपन्यास का नायक होरी का पुनर्वास हुआ था । इस फिल्म मुझे 'मंत्र' कहानी की याद दिलाई । इस कहानी के परिवार भी सांप को पकड़ता है , पर सांप की तरह डसते नहीं । डसनेवाले तो समाज में ऊंचे पद पर बैठे अधिकारी वर्ग है । मंत्र कहानी के पिता की तरह ये लोग भी डसनेवालों की अच्छा ही चाहते हैं ।

जय भीम एक अमानवीय रक्षक के न्याय से वंचित होने की कहानी है, जो 1995 में जाति व्यवस्था के वर्चस्व और 3 वंचित युवाओं के लिए पैसे की राजनीति के वर्चस्व के तहत न्याय की देवी के सामने अकेले लड़े थे..! फिल्म भारतीय संविधान में नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा में बंदी प्रत्यक्षीकरण के महत्व पर एक आधिकारिक वार्ता के साथ समाप्त होती है। सिनेमा की राजनीति को बताना नहीं होता, देखना और परखना पड़ता है..! जय भीम बड़ी संख्या में उन लोगों का आदर्श वाक्य है जो अम्बेडकर के विचारों को शामिल करते हुए अम्बेडकर की दृष्टि के लिए लड़ रहे हैं। एडवोकेट चंद्रू की तरह, जय भीम को बुलाया जा सकता है और हम उनमें से एक के रूप में शामिल हो सकते हैं...!!! एक प्रशंसक के रूप में, और एक फिल्म प्रेमी के रूप में, मैं सूर्या जैसे मुख्यधारा के अभिनेता द्वारा इस तरह की फिल्म का निर्माण और अभिनय करके बहुत खुश और गर्व महसूस कर रहा हूं।

बोलीवुड के रंगीले फिल्म की तरह पैसा कमाना इस फिल्म का उद्देश्य नहीं । यह फिल्म एक सामाजिक सच्चाई की तरफ इशारा करती है । आदिवासी जीवन की एक सच्ची तस्वीर है यह फिल्म । फिल्म रिलीज़ होने के बाद इसका बहुत अच्छा प्रभाव सब पर पड़ा । तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को फिल्म का प्रोड्यूसर एवं नायक सूर्या ने एक करोड़ रूपया दिया , ताकि वे उन पैसों से भूमिहीन आदिवासियों को भूमि दिला दे । मुख्यमंत्री ने भी उन लोगों के लिए एक अच्छा कदम उठाया है । जो निजी जीवन की सेंकिनी है यानी निजी राजकंनु की विधवा को घर बनवाकर देने का आदेश भी दिया । इस तरह जय भीम फिल्म का सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव बहुत बड़ा है । मैं अंबेडकर के शब्दों के साथ समाप्त करता हूं .. कानून

और व्यवस्था राजनीतिक शरीर की दवा है और जब राजनीतिक शरीर बीमार हो जाता है, तो दवा दी जानी चाहिए - भीमराव अम्बेडकर।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उच्चतर हिंदी कोश, सं.डॉ हरदेव बाहरी ,वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2006 , पृ. 188
2. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2001,पृ.13
3. श्यौराज सिंह बेचैन, युद्धरत आम आदमी ,सं.रमणिका गुप्ता, दिल्ली ,1998, पृ.सं.14
4. भारतीय दलित साहित्य, पुन्नी सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2017 , पृ.325
5. समाज के हाशिये का सिनेमाई हाशिया, हंस, फरवरी 2013, पृ.36

****